नोट

इकाई–8: 'बाणभट्ट की आत्मकथा' : तात्विक समीक्षा

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 कथावस्तु/कथानक के आधार पर

8.2 पात्र-योजना एवं चरित्र-चित्रण कौशल के आधार पर

8.3 देशकाल एवं वातावरण के आधार पर

8.4 भाषा-शैली सौष्ठव के आधार पर

8.5 उद्देश्य के आधार पर

8.6 शीर्षक के आधार पर

8.7 सारांश (Summary)

8.8 शब्दकोश (Keywords)

8.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

8.10 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की तात्विक समीक्षा के आधारों को जानने में;
- मुख्य तथा गौण पात्रों की जानकारी प्राप्त करने में;
- आत्मकथा के देशकाल एवं वातावरण को समझने में;
- भाषा एवं इसके प्रकारों का विवरण प्रस्तुत करने में;
- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के उद्देश्य एवं शीर्षक की व्याख्या करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

'बाणभट्ट की आत्मकथा' द्विवेदी जी का एक ऐसा वृहदाकार उपन्यास है जो आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है, इसीलिए उसके शीर्षक में भी 'आत्मकथा' शब्द को व्यइवत किया गया है। सातवीं शताब्दी के ख्यातिशब्द संस्कृत कवि बाणभट्ट के जीवनगत प्रसंगों को लेकर-जिसमें कुछ ऐतिहासिकता है और कुछ लेखक की उर्वरक कल्पना-लिखा गया यह उपन्यास कवि के जीवन को तो व्याख्यायित करता ही है, साथ ही कुछ शाश्वत तथ्यों, दार्शनिक मत-मतांतरों एवं युगीन परिवेश का भी रूपायन इसमें हुआ है। इसमें एक ओर सामंती व्यवस्था की शिकार नारियों की दु:ख गाथाएँ हैं तो दूसरी ओर राष्ट्रीय-गौरव की सुरक्षा का प्रश्न। इसलिए कथा प्रसंगों में भी पर्याप्त विविधता परिलक्षित होती है। यह विविधता विभिन्न प्रकार की मन:स्थितियों के अनुरूप है और इसमें एक वैचारिक प्रवाह है।

Scanned by CamScanner

नोट

इस उपन्यास की तात्विक समीक्षा निम्न तत्वों के आधार पर की जा सकती है–

8.1 कथावस्तु/कथानक के आधार पर

उपन्यास को एक विशिष्ट आकार प्रदान करने में कथावस्तु का विशेष योगदान होता है और विषयवस्तु के क्षेत्र की दृष्टि से–व्यापकता के परिमाण में उनमें विभिन्न मुख्य एवं प्रासंगिक कथा-प्रसंगों की योजना भी होती है जो केंद्रीय कथा को गति देते हैं, उसे स्पष्ट करते हैं। उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचय इसी से मिलता है कि वह इन विविध कथा-प्रसंगों की योजना करके भी इनमें पारस्परिक सम्बंध-निर्वाह किस प्रकार करता है। इसके अतिरिक्त इनके प्रस्तुतीकरण के ढंग में भी उसकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

उपन्यास में कथानक की स्थिति और उसके महत्त्व को दर्शाते हुए एक विचारक का कथन है कि प्रत्येक उपन्यास में एक कथासूत्र (थीम) आदि से अंत तक प्रवर्धमान रहता है। साहित्यकार साधारण में से असाधारण को चुनकर ही महान बन सकता है। साहित्य-स्रष्टा सदैव महती अंतर्दृष्टि, प्रभावात्मकता एवं व्यापक संवेदनशीलता की वरेण्य कसौटी पर कसकर ही किसी विषय को चुनता है। जो घटना जीवन के मर्म को घर्षित कर उसमें प्राण, ज्योति और गति का संचार करने में पूर्णतय: समक्ष हो सके, वही स्रष्टा की प्रतिभा एवं मेधा की संगिनी बनकर कलापूर्ण महती का रूप धारण कर सकती है। वस्तुत: बात यह है कि उपन्यास मुख्यत: एक कलापूर्ण-कृति है, अत: उसमें दिग्दर्शित जीवन के कार्य-व्यापार एवं सामान्य घटनाएँ सरल एवं स्वाभाविक होते हुए भी कलाकार की प्रतिभा, कौशल एवं शिल्प के संयोग में असाधारण हो जाते हैं। कथानक का चयन एवं उसका व्यवस्थित कलापूर्ण प्रस्तुतीकरण ही लेखक की महानता के मानदंड हैं। कथावस्तु उपन्यासों में विविध रूपों में प्रस्तुत होती है, यथा-कथासूत्र-थीम, मुख्य कथानक प्लाट, प्रासंगिक कथाएँ, अंतर्कथाएँ-एपीसोड, उपकथानक-अंडरप्लाट, उपन्यास में इन विविध प्रकारात्मक कथानक रूपों के आ जाने से उसमें पात्रों की संख्या और कृति के कलेवर में वृद्धि हो ही जाती है। फलत: न मुख्य कथानक का ही पूर्ण संगठन हो पाता है और न पात्रों का चरित्र-विकास ही ऐसी अवस्था में संभव होता है। कई पात्र तो उपन्यास की घटना-भित्ति में निर्जीव पुतलिकाओं जैसे रहकर अपने सारहीन, स्पंदनहीन एवं मृतप्राय व्यक्तित्व की करुणगाथा को ही मौनभाव से संकेतिक करके रह जाते हैं और उन्हें अपने विकास का अवसर ही नहीं मिल पाता, जिससे उस पात्र की स्थिति से पाठक भी विभ्रमित होकर रह जाता है।

उपन्यास का मुख्य एवं अकेला कथानक ही अपने आप में इतना मर्यादित, सुगठितपूर्ण, गतियुक्त, मौलिक, प्रभावपूर्ण एवं अभिराम होना चाहिए कि पाठक को मनोरंजन के लिए किसी अन्य दिशा की ओर दृष्टि न दौड़ानी पड़े। प्रभावान्वित के लिए भी यह कथानक-दृष्टि परमावश्यक है। यदि किसी प्रकार से लेखक को उपकथानक अथवा अंतर्कथा की अपनी रचना में अनिवार्यता अनुभूत हो तो उसकी मुख्य कथा के साथ शत-प्रतिशत संगति बैठनी चाहिए ताकि पाठक की अनुभूति एवं संप्रेषणीयता विशृंखलित न हो। यही एक श्रेष्ठ उपन्यास की कसौटी है।

8.2 पात्र-योजना एवं चरित्र-चित्रण कौशल के आधार पर

उपन्यास में कथावस्तु का विकास एवं उसके स्वरूप का निर्माण पात्रों के माध्यम से होता। विभिन्न प्रकार की घटनाओं को किसी पात्र के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है, पात्रहीन कोई घटना हो ही नहीं सकती। अत: उपन्यास में जितना महत्त्व कहानी का है, उतना ही महत्त्व पात्रों का है। एतदर्थ, उपन्यासकार अपने उपन्यास की कहानी के अनुकूल पात्रों की संयोजना करके उनकी आकृति, अनुकृति, विचार, मनोभाव, कार्य-कलाप एवं अनुभव आदि का चित्रण करता है और इस प्रकार कथा को सजीव, रोचक एवं आकर्षक बनाता है। उपन्यासकार की सफलता इसी में है कि उसके पात्र सजीव एवं स्वाभाविक हों। पात्रों की अनुकूलता में ही कथानक की अनुकूलता है।

उपन्यास में पात्रों की उपस्थिति और उनके चरित्रांकन की नियोजना के विषय में अपना मत प्रतिपादित करते हुए एक आलोचक लिखते हैं कि 'पात्रों की सजीवता, स्वतंत्रता और क्रियाशीलता' उपन्यास का प्राण है। इस प्राण को

Scanned by CamScanner

पुरुष-पात्र

बाणभट्ट : आत्मकथात्मक उपन्यास का नायक, अप्रतिम विद्वान् एवं विश्रुत कवि, कुशल अभिनेता, अप्रतिम साहसी, मानवमात्र से प्रेम करने वाला, सुसंस्कृत, शिष्ट, भावुक एवं सत्यभाषी।

कृष्णवर्द्धन : साहसी, वीर, राजनीति के प्रकांड, व्यवहार कुशल, पवित्र हृदय, भावुक, विनयशील, उदारता की खिन, विद्या के भण्डागार, तेजस्वी, प्रतिभा संपन्न एवं प्रत्युत्पन्नमति। सम्राट हर्षवर्द्धन के अनुज एवं स्थाण्वीश्वर के प्रख्यात नीतिज्ञ।

विग्रहवर्मा : मौखरिराज यशोवर्मा का सेवक, वीर, साहसी सेनानायक, मौखरिवंशी के प्रति अटूट श्रद्धालु, स्वामिभक्त, आत्मविश्वासी एवं स्वाभिमानी।

लोरिकदेव : भद्रेश्वर दुर्ग का स्वामी, अशिक्षित किंतु नीति-कुशल, शालीनता, शिष्टता, साम्यता, वीरता एवं सत्यता का प्रतीक, स्वाभिमानी, सादगीपसंद, कृत्रिमताविहीन और संयमी।

अघोरभैरव : वाममार्गी साधक, गंभीर एवं निश्छल, चमत्कारी, तेजस्वी एवं सत्याश्रयी अवधूत।

सुगतभद्र : बौद्ध भिक्षु एवं आचार्य, परम विद्वान एवं अलौकिक अध्ययनशील।

इसके अतिरिक्त कंचुकी वाभ्रव्य, विरतिव्रज, ग्रहवर्मा, शार्विकल, धावक, सामने, देवी मंदिर का पुजारी, महाराज हर्षदेव, वसुभूति, उद्भपति, अघोरघंट एवं तुवरमिलिंद आदि अनेक पात्र इस उपन्यास में आते हैं, इन सबका यहाँ परिगणन कराना आवश्यक नहीं है।

स्त्री-पात्र

भट्टिनी : उपन्यास की नायिका, बाणभट्ट की प्रेमिका, देवपुत्र तुवरमिलिंद की अपहृता कन्या, कोमल, मधुर एवं उदार हृदया, भगवान महावराह की उपासिका, अक्षुण्ण प्रेम की साधिका करुणा एवं निराशा की मूर्ति।

निपुणिका : उपन्यास की प्रधान पात्र, बाणभट्ट की प्रेमिका, अभागिनी किंतु उत्सर्गमयी, बाल-विधवा कुशल अभिनेत्री एवं राजकुल की परिचारिका, अशिक्षिता किंतु अथाह हृदया और प्रत्युत्पन्न बुद्धिवाली।

महामाया : वाममार्ग में दीक्षित संन्यासिनी, पहले मौखरिनरेश ग्रहवर्मा की रानी, कुलूतराज कन्या। अत्यधिक गरिमामयी नारी, विवाह से पूर्व अघोरभैरव की वाग्वदत्ता और कालांतर में शिष्या।

सुचरिता : उपकथा की नायिका, नारी की अन्तर्व्यथा की प्रतीक, विरतिविज्ञ की पत्नी और नारायण की उपासिका।

इनके अतिरिक्त गणिका मदनश्री, चारुस्मिता, अंतपुर की द्वार-रक्षिणी तथा परिचारिकाएँ आदि स्त्री पात्र 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के कथानक में आते हैं।

8.3 देशकाल एवं वातावरण के आधार पर

साहित्य में विशेष रूप, से कथा साहित्य में देशकाल एवं वातावरण की संयोजना करना आवश्यक होता है। इसी कारण इसे एक पृथक् तत्व के रूप में स्वीकृति मिली है। उपन्यास में वास्तविकता, सजीवता और गरिमा लाने के लिए अनुकूल वातावरण भी अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण है। देशकाल की परिस्थितियों, परंपराओं और जीवन पद्धतियों की दिग्दर्शिका की वेशभूषा आदि का जितना अच्छा चित्रण उपन्यास में होगा उतनी ही सजीवता एवं प्रभावोत्पादकता उसमें आ सकेगी। ऐतिहासिक एवं आंचलिक उपन्यासों में वातावरण का सर्वाधिक महत्त्व है। ऐसे उपन्यास वातावरण की रंचमात्र भी उपेक्षा करके नहीं चल सकते। औपन्यासिक पात्रों के वस्त्राभूषण-विधान, आचार-व्यवहार, उनके कार्यव्यापाक्, उनका परिवेश, उनकी भाषा आदि के प्रति उपन्यासकार यदि सजग नहीं है तो वह कथा में यथार्थता और सजीवता की सृष्टि कदापि नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि उसे जिस युग के कथानक को प्रस्तुत करना होता है, बिना उपर्युक्त सतर्कताओं के वह उसे युगानुकूल रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाएगा। यहाँ उपन्यास की सूझबूझ उसका अनुभव और परिवेश-सृष्टि की उसकी सामर्थ्य ही उसके उपन्यास को सफल से सफलतम बनाने

Scanned by CamScanner

नोट

में योगदान देती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपन्यास में जिस काल-विशेष की कथा प्रस्तुत की जा रही हो उसमें उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आदि परिस्थितियों का भी सफलता के साथ चित्रण होना अपरिहार्य है। वातावरण के विषय में यह अत्यंत स्मरणीय है कि यह कथानक एवं चरित्र के प्रकाशन एवं स्पष्टीकरण का साधन मात्र है। अत: साधन कहीं साध्य न बन जाए, या साध्य के व्यक्तित्व को आच्छादित करके हीन एवं उपेक्ष्य न बना दे, इस मूल पकड़ का ध्यान सृष्टा को आरंभ से ही होना चाहिए। वातावरण में देशकाल बाह्य है और मनोदशा आंतरिक, अत: दोनों ही प्रकारों की पूरी क्षमता कृति में आवश्यक है। इस उभयपक्षीय पूर्ति द्वारा ही सच्चा एवं पूर्ण वातावरण तैयार होता है। जहाँ वातावरण पात्रों की मानसिक एवं शारीरिक तैयारी में एक उष्णता और प्रवाह का संचार करता है, वहाँ दर्शकों एवं पाठकों की भी मानसिक तैयारी में भी सहायक सिद्ध होता है। कभी-कभी ही नहीं, प्राय: सदा वातावरण की प्रतिकूलता एवं अनुकूलता रचना के महत्त्व को ही अन्यथा कर देती है।

नोट्स हास्य के अवसर पर शोक का वातावरण और शोक के समय हर्षोल्लास निश्चित रूप से मूल रस के स्वाद में बाधा ही उत्पन्न नहीं करता, अपितु उसे स्वाद की स्थिति में पहुँचने ही नहीं देता। प्राकृतिक चित्रणों और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य उपन्यास को पर्याप्त मात्रा में स्पंदनयुक्त, सरस, प्रभाव एवं उष्णप्राण बनाता है। इससे उपन्यास में काव्य का-सा लालित्य एवं माधुर्य प्रवाहित होने लगता है। हमारे संवेग भी बड़ी प्रबलता से उभरते हैं।

स्पष्ट है कि वातावरण की समुचित योजना रचना को सपंख प्रभावक एवं प्रेष्यत्वपूर्ण बनाती है उपन्यास को विशेष रूप से। श्रेष्ठ वातावरण की सृष्टि उपन्यास में शब्दचित्रों पर निर्भर करती है। अत: स्रष्टा को एक निष्णात शब्दशिल्पी होना चाहिए। ऐसे मर्मी स्रष्टा द्वारा प्रस्तुत वातावरण सहज ही उपन्यास को मर्मस्पर्शी बना देता है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उस ऐतिहासिक परिवेश की पृष्ठभूमि में लिखा गया है जब भारत में सम्राट हर्षवर्द्धन का साम्राज्य था। यह सातवीं शती की बात है। बाणभट्ट उपन्यास का नायक हर्षवर्द्धन का सभा पंडित था। इसलिए उपन्यास का वातावरण भी सातवीं शती के युगीन परिवेश को प्रतिफलित करता है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में देशकाल अथवा वातावरण का चित्रण किस सीमा तक स्वाभाविक, सुंदर और कलात्मक बन पड़ा है, इसका विचार करते समय हमें उसके वातावरण के रूप को देखना पड़ता है। वातावरण दो प्रकार का हो सकता है। (1) आंतरिक वातावरण और (2) बाह्य वातावरण।

आंतरिक वातावरण में घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण आता है तथा पात्रों की मानसिक स्थिति, उनके हाव-भाव तथा अंतर्द्वन्द्व का चित्र आता है। दूसरी ओर बाह्य वातावरण में तत्कालीन सभी परिस्थितियाँ आ जाती हैं। इस दृष्टि से हम दोनों प्रकार के वातावरण को निम्नांकित उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

1. **आंतरिक वातावरण**
   - (क) घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण
   - (ख) पात्रों की मानसिक स्थिति का चित्रण
   - (ग) पात्रों के हाव-भावों और अंतर्द्वंद का चित्रण।
2. **बाह्य वातावरण**
   - (क) स्थानीय वातावरण
   - (ख) प्रकृति-चित्रण के रूप में

Scanned by CamScanner

नोट

"वज्रतीर्थ का एक विशाल शमशान था। चारों ओर नीम के तेल में भूने जाते हुए लशुन के समान जलते हुए शवों की दुर्गंध व्याप्त हो रही थी। सारा शमशानघाट गिद्धों, और सियारों के पद-चिह्नों से भरा था। हड्डियों और माँस के छिन्न खंडों के ऊपर संध्या का धूसर प्रकाश बड़ा भयावना दिखाई दे रहा था। जलती चिताओं के पास थोड़ा प्रकाश दिखाई दे जाता था, परंतु उनके आगे अंधकार और भी ठोस हो जाता था। रह-रहकर उलूकों के धूत्कार और शिवाओं के चीत्कार से शमशान का वातावरण प्रकंपित हो उठता था। इसी विकट दृश्य के बीच करालादेवी का मंदिर था। मंदिर वह नाम मात्र का ही था। एक चत्वर, एक हवन कुंड और धूपकाष्ठ के अतिरिक्त वहाँ और कुछ नहीं था। करालादेवी की मूर्ति सचमुच ही कराल थी। उनकी लोल जिह्वा एक ही साथ विश्व को ग्रास करती हुई उसका त्राण करती हुई भी जान पड़ती थी। उसके गले में विशाल मुण्डमाला गुल्फों तक लटक रही थी। करालादेवी के सामने वही रहस्यमयी स्त्री जानुपातपूर्वक खड़ी थी और उससे भी अधिक अशिव वेशधारी एक पुरुष ताजी चर्बी से हवन कर रहा था। आहुति पड़ने के साथ ही साथ अग्नि की पिंगल लोल जिह्वा विकराल भाव से लपक पड़ती थी और क्षणभर के लिए वायुमंडल दुर्गंधि से और नभोमंडल पिंगल प्रकाश से व्याप्त हो जाता था। कुंड के चारों ओर नरकपालों में भिन्न-भिन्न आह्वनीय सामग्री रखी हुई थी।"

3. वर्णन-शैली की प्रभावात्मकता–'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में द्विवेदी जी की वर्णन-शैली बड़ी ही व्यंजक और प्रभावात्मक है। उपर्युक्त उद्धरण उनकी वर्णन-शैली की सूक्ष्मता, प्रभावात्मकता एवं कुशलता का भी बड़ा ही यथार्थ और सुंदर उदाहरण है। अन्यत्र भी उनकी यही प्रभावात्मकता दिखाई देती है।

4. सोद्देश्यता–देशकाल व वातावरण का वर्णन साधन है, साध्य नहीं। इसलिए न तो इतना अधिक हो कि सर्वत्र वातावरण की ही प्रधानता हो जाए और न इतना कम कि वातावरण के संबंध में कुछ ज्ञात ही न होने पाए। वह कथानक तथा वर्णन में पूर्ण रूपेण घुलमिल जाना चाहिए। द्विवेदी जी के इस उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भी यह बात देखी जा सकती है। उनका वातावरण संबंधी चित्रण कलात्मक है और साथ ही सोद्देश्य भी है। जहाँ आवश्यकता है, वहीं उसका वर्णन हुआ है और वह कथा में पूर्णरूपेण घुलमिल गया है। उपन्यास का प्रमुख उद्देश्य विश्रुत कवि बाणभट्ट के माध्यम से मानवकल्याण भावना को प्रस्तुत करता रहा है इसलिए इसमें समाज का भी पर्याप्त चित्रण हुआ है और वातावरण का चित्र इसमें पूरी तरह सहायक सिद्ध हुआ है।

निष्कर्ष

समग्रत: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में वातावरण का बड़ा स्वाभाविक एवं पूर्णत: सफल चित्रण हुआ है। बाणभट्ट कालीन युग, तत्कालीन परिवेश के साथ इसमें मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति पा सका है। इस प्रकार इसमें आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही प्रकार के वातावरण संबंधी चित्र पूर्णत: सफलता के साथ चित्रित हो गए हैं।

8.4 भाषा-शैली सौष्ठव के आधार पर

भाषा

भाषा, भावों की वाहिका होती है अर्थात् उपन्यासकार के मानसिक भावों को भाषा के माध्यम से ही मूर्तता होती है। उपन्यास की भाषा का रूप देखते समय हमें दो दृष्टियों से विचार करना होता है। उपन्यासकार की अपनी भाषा और उसके पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा। यद्यपि दूसरे प्रकार की भाषा भी उपन्यासकार के ही गुण कौशल की परिचायिका होती है, फिर भी पात्रों की विभिन्न मन:स्थिति के अनुकूल भाषा में भेद हो सकता है और उसमें शैथिल्य अथवा कसावट भी आ सकती है लेकिन जो भाषा प्रत्यक्ष रूप से लेखक प्रस्तुत करता है, वह उसकी अपनी भाषा होती है। किसी भी साहित्यक रचना का महत्व उसके अन्य गुणों के साथ ही भाषा-शैली की दृष्टि से भी आंका जाता है। रचना में यदि भाषा-शैली प्रभावी, मार्मिक एवं सहज-संप्रेषणीय नहीं होगी और उसे शब्दाडंबर में ही अभिव्यक्ति दी गई हो, तो रचना अपनी अर्थवत्ता खो बैठती है।

Scanned by CamScanner

'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भाषा का अध्ययन करते समय उसके निम्नलिखित रूप हमारे सामने आते हैं–

(क) कथा-वर्णन में प्रयुक्त भाषा रूप

1. सरल-स्वाभाविक बोलचाल की भाषा
2. अलंकृत और काव्यात्मक भाषा
3. गंभीर चिंतन-प्रधान भाषा।

(ख) संवादों में प्रयुक्त भाषा-रूप

1. साधारण बोलचाल की भाषा
2. शुद्ध परिनिष्ठित हिंदी खड़ी बोली का रूप
3. गंभीर चिंतन-प्रधान भाषा
4. अलंकृत और काव्यात्मक भाषा।

अब आगे इन पर सोदाहरण 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

1. सरल-स्वाभाविक बोलचाल की भाषा–द्विवेदी जी ने एक विश्व-विश्रुत संस्कृत कवि बाणभट्ट की आत्मकथा की सर्जना की इसलिए उसमें स्वाभाविक और सहज भाषा का प्रयोग बहुत कम परिमाण में हुआ है, तथापि जहाँ भी संभव हो सकता था उन्होंने वर्णनों में ऐसी भाषा रखने का भी प्रयास किया है। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"आवारा तो मैं था ही। इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में, बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकन में मैंने कौन-सा कर्म नहीं किया? कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य-मंडली स्थापित करता और कभी पुराण-वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा, सारांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं।"

2. अलंकृत और काव्यात्मक भाषा–द्विवेदी जी हिंदी और संस्कृत के प्रकांड पंडित ही नहीं हैं वरन् सहृदय रसिकता से भी परिपूर्ण हैं। भाषागत अलंकरण मोह तथा काव्यात्मकता के प्रति उन्हें अतिशय अनुराग है। यही कारण है कि उपन्यास में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग प्रचुरता से उन्होंने किया है। बस उन्हें अवसर चाहिए, अवसर मिला नहीं कि उनका रसिक हृदय सजी-संवरी भाषा से चित्र बनाने में संलग्न हो जाता है। इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण देखिए–

"निपुणिका ने भक्ति से गदगद होकर उस दिव्य मूर्ति के चरण-तल में तत्काल उद्धृत ग्यारह आर्द्र पद्म चढ़ाकर प्रणिपात किया। ऐसा जान पड़ता था कि मदनविरह-विधुरा रतिदेवी ही चित्रनयन का कोप शमन करने के लिए प्रणत हुई है। निपुणिका के रोम-रोम से कृतज्ञता की ज्योति निर्गत हो रही थी। महादेव पर चढ़ाए हुए उन जल-बिंदुस्त्रावी कमलों को देखकर मेरा मन विगलित हो गया। वे ऊर्ध्वविपाटित चंद्रदलों की भाँति, तांडव-बिहारी मत्त धूर्जटि के विकट अट्टहास के छोटे-छोटे अवयवों की भाँति, तांडव-विध्वस्त वासुकि नाग के फण कलशों की भाँति, पांचजन्य शंख के सहोदरों की भाँति, क्षीरोद सागर के हृदयपद्मों की भाँति, ऐरावत समर्पित मुक्तामय मुकुटों की भाँति महादेव की मूर्ति की शोभा बढ़ा रहे थे। उनके सामने जानुपातपूर्वक झुकी हुई निपुणिका स्वर्मंदाकिनी धारा की तरह मन से शत-शत पवित्र उर्मियों को संचालित कर रही थी। महादेव को प्रणाम करते समय मेरा मन इस पवित्रता की मूर्ति को, भक्ति की स्रोतस्विनी को, श्रद्धा की निर्झरिणी को, अनुराग की खनि को, सेवा की उत्सधारा को चुपचाप प्रणाम किए बिना न रह सका।"

यह तो था भक्तिमयी निपुणिका का काव्यात्मक वर्णन और अब देखिए उपन्यास में वर्णित किए गए अनेक प्रकृति-वर्णनों में से एक वर्णन। सूर्योदय का यह वर्णन कितना अलंकृत और काव्यात्मक है, पाठक स्वयं देख लें।

"उस समय आकाश वृद्ध कपोत के पक्ष के समान धूम्र हो गया था। चंद्रमा कटी हुई पतंग की भाँति अस्तशिखर

Scanned by CamScanner

पर ढल चुका था। तरुण अरुण की पीताभ रश्मियाँ स्वर्ण शलाका की बनी झाड़ू के समान पूर्वगमन के नक्षत्रों को झाड़ू लगा रही थी। महारुद्र के पिनाक की भाँति धनुराशि आकाश के पश्चिम-मण्डलार्थ में प्रत्यंचित हो चुकी थी और क्षीणभूमिष्ठा रजनी संन्यास लेने के लिए एक-एक करके अपने नक्षत्रालंकारों को खोल रही थी। चंडीमण्डप तुहिनसिक्त हो गया था और सामने के मैदान की दूर्वावलियाँ अलसशिथिल भाव में पड़ी दीख रही थीं।"

टास्क 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को 'अद्भुत प्रेम-व्यंजना का महाकाव्य' कहना कितना उचित है? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

3. **गंभीर चिंतन-प्रधान भाषा**–जहाँ उपन्यासकार विचारों की अभिव्यक्ति करता है, उसका चिंतन-पक्ष प्रबल होता है, वहाँ गंभीर, परिष्कृत और चिंतन-प्रधान भाषा का प्रयोग करता है। इस प्रकार की भाषा में कथा-प्रवाह की अपेक्षा गद्यात्मकता अधिक है, फिर भी कथा-प्रवाह के बीच भी इसके दर्शन किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ–

"राज्य-गठन, सैन्य-संचालन, मठ-स्थापन और निर्जन-वास पुरुष की समताहीन, मर्यादाहीन, शृंखलाहीन महत्त्वकांक्षा के परिणाम हैं। इनको नियंत्रित कर सकने की एकमात्र शक्ति नारी है। कालिदास ने इस रहस्य को पहचाना था। इतिहास साक्षी है कि इस महिमामयी शक्ति की उपेक्षा करने वाले साम्राज्य नष्ट हो गए हैं, मठ विध्वस्त हो गए हैं, ज्ञान और वैराग्य के जंजाल फेन बुदबुद की भाँति क्षण भर में विलुप्त हो गए हैं। कालिदास ने जिस महासत्य का साक्षात्कार किया था, उसे वे ही प्रकाशित कर सकते थे। सरस्वती स्वयं उनके कंठ में वास करती थी। वे वाग्देवता के दुलारे थे। मैं पथभ्रांत, अकर्मा उनकी तुलना में कैसे रखा जा सकता हूँ?"

8.5 उद्देश्य के आधार पर

कोई भी साहित्यिक रचना निरुद्देश्य नहीं होती, उसकी सर्जना के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी, प्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत का पोषक है और अप्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला के लिए' के सिद्धांत का प्रतिपादक है। यद्यपि उद्देश्य की पूर्व योजना से उपन्यास की कला एवं स्वाभाविक भावधारा जड़ित, बंधनबद्ध एवं निजत्वहीन एवं निर्जीव हो जाती है। उसमें पूर्वाग्रह की बोझिलता के कारण निजत्व का सर्वथा लोप हो जाता है। किंतु यदि स्वभावतः कोई उद्देश्य उसमें समाविष्ट हो गया है, तो वह श्लाघ्य ही कहा जाना चाहिए। द्विवेदी जी संस्कृत एवं हिंदी साहित्य के न केवल मूर्धन्य एवं प्रकांड पंडित हैं वरन् एक विशिष्ट जीवनधारा से भी ओतप्रोत हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में व्यक्ति एवं समाज की यथार्थ निर्मल-निष्पाप रूप में अभिव्यक्ति हुई है। यह यथार्थ एक ओर व्यक्ति संदर्भों में ध्वनित हुआ है और दूसरी ओर सामाजिक संदर्भों में भी व्यक्त हुआ है।

द्विवेदी जी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का बाह्य उद्देश्य, जिसे हम मोटा उद्देश्य भी कह सकते हैं–बाणभट्ट एवं हर्षवर्धनकालीन युग को उसके तमाम संदर्भों-सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक के साथ चित्रित, वर्णित कर देना है। एक प्रकार से, इस उपन्यास के माध्यम से द्विवेदी जी इतिहास के भीतर के इतिहास से पाठक को परिचित करना चाहते हैं। दूसरी ओर बाणभट्ट जैसे प्रकांड पंडित एवं सहृदय कवि के माध्यम से द्विवेदी जी विश्व मानववाद का प्रत्याख्यान करना चाहते हैं। भट्टिनी बाणभट्ट से, जैसे द्विवेदी जी के ही इस उद्देश्य को व्यक्त करते हुए कहती है–"एक जाति दूसरी को म्लेच्छ समझती है, एक मनुष्य दूसरे को नीच समझता है, इससे बढ़कर अशांति का कारण क्या हो सकता है भट्ट? तुम्हीं ऐसे हो जो नर लोक से किन्नर लोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक दृश्य, एक ही करुणायित चित्त को हृदयंगम करा सकते हो।"

Scanned by CamScanner